रामायण में यदि कोई नयी चीज प्रविष्ट हुई तो उसे रामायण का प्रसिद्ध अंश न मानकर क्षेपक की संज्ञा दे दी गयी। वाल्मीकिरामायण के टीकाकारों ने तत्तत् क्षेपकों को न मानने का हेतु यही आधार बताया कि 'यहाँ सम्प्रदाय-प्राप्त व्याख्या नहीं है, अतः क्षेपक प्रमाण नहीं माने जा सकते। इसी सम्प्रदाय विशेष के कारण ही वाल्मीकिरामायण के मौलिक रूप की रक्षा होती रही है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि "वाल्मीकिरामायण की कथाओं में कालान्तर में व्यापक काटछाँट की गयी।" रामायण में महाभारत की चर्चा नहीं है। इधर काव्यों में तथा कालिदास अश्वघोष प्रभृति कवियों ने भी रामायण की चर्चा की है। बौद्ध जातकों तथा जैन पउमचरियं में रामायण का वर्णन है। इनके आधार पर ही रामकथाओं के भिन्न रूप बने भी हैं। अनेक विदेशी विद्वानों ने भी रामकथा के सम्बन्ध में वाल्मीकिरामायण को ही सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। भारतीय संस्कृति का सन्देशवाहक यह महान् ग्रन्थ रामकथासागर में युगों से भारतीयों को गोता लगवाकर आज भी प्रत्येक भारतीय को उसमें गोता लगवाकर उनके जीवन को मानवता के उदात्त आदर्शों के अनुसार जीने की पवित्र प्रेरणा दे रहा है। ऐसे प्रामाणिक ग्रंथ को छोड़कर निराधार कल्पना के सहारे नयी खोजों का दावा करना बौद्धिकस्तर से नीचे उतरने की बात है।

आधुनिक लोग वाल्मीकिरामायण के अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर एवं लङ्का इन पाँच ही काण्डों को प्रामाणिक मानते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। वैसे तो वाल्मीकिरामायण में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र ही राम को विष्णु का अवतार माना गया है। अतः राम को गुप्तकाल में विष्णु का अवतार कहा गया, यह बात पूर्णतया गलत है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वाल्मीकिरामायण की सभी घटनाएँ पूर्ण प्रामाणिक हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के मूल रहस्य इसी ग्रन्थ में सुरक्षित हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को आधुनिक इतिहास की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसी मान्य ग्रन्थ के कुछ अंशों को प्रामाणिक तथा कुछ को अपनी आधारहीन बातों को सिद्ध न कर सकने की दशा में अप्रामाणिक मानने की दुराग्रही दृष्टि का परित्याग करना इस समय अत्यावश्यक है। सभी लोगों को धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों की बातों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने के प्रयास से अपने को दूर रखने का प्रयास करना चाहिये।

धार्मिक ग्रन्थों के विषय में ऐसी बातों से तनाव एवं विवाद का वातावरण पैदा हो जाता है। हमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना है जिससे इस समय देश में कोई दूसरी समस्या उपस्थित हो। रामायण की घटनाओं के विषय में धर्माचार्यों का निर्णय ही एकमात्र दिशानिर्देक होना चाहिये। इस सम्बन्ध में हम सदैव आवश्यक विचार-विनिमय के लिए तत्पर हैं।

निगमागमसार मानस का प्रत्येक पद पापराशिनाशी एवं अकाट्य

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने रामचरितमानस में वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, पुराणों तथा आगमों, तन्त्रों एवं संहिताओं, धर्मशास्त्रों के अनुसार उत्कृष्ट कोटि के विचारों से परिपूर्ण श्रीराम के चरित्र को उपस्थापित किया है और बड़ी निर्भीकता से शास्त्रीय सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं।

जीव यद्यपि सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् प्रभु का निर्मल निष्कलङ्क पवित्र अंश ही है—

"ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥" (रा० मा० ७।११६।१)

तथापि मायापराधीन होने के कारण और अविद्या, काम-कर्मों से उसकी ज्ञान-विज्ञान की परिधि बहुत सीमित हो जाती है। सच्छास्त्रों एवं सद्गुरुओं की कृपा से ही धर्म-ब्रह्म का प्रबोध होता है। अतः सभी

आस्तिक सम्प्रदायों ने वेदादि-शास्त्रों के प्रामाण्य का सर्वोत्कृष्ट महत्त्व माना है। वेदादि-शास्त्रों का ही परमसार श्रीरामचरितमानस है। शास्त्रों का अमुक अंश ही आदरणीय है, अमुक नहीं, यह आस्तिकता नहीं है। वेदादि-शास्त्रों के महातात्पर्य का विषय 'परब्रह्म' रामचरितमानस के 'राम' हैं। उनका परम-पवित्र चरित्र ही रामचरित-मानस का वर्णनीय विषय है। राम के सम्बन्ध से ही रावण का भी चरित्र वर्णनीय कोटि में आता है; तभी तो—

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥"

के अनुसार शतकोटिप्रविस्तर रामायण का एक-एक अक्षर महापातकों को नष्ट करने की सामर्थ्य रखता है। फलतः रावण के चरित्र का वर्णन भी रामचरित्र का अङ्ग होने के नाते ही पापनाशन में सक्षम है, अतएव अनुष्ठान में सबका पाठ होता है। श्रीवाल्मीकिरामायण के सभी श्लोक संपुटितरूप से अनुष्ठान में पठनीय होते हैं। वेदों का प्रत्येक अक्षर सार्थक एवं सप्रयोजन है; यह उत्कृष्ट मीमांसापद्धति से सिद्ध है। ठीक वैसे ही रामचरितमानस का प्रत्येक अक्षर सार्थक एवं सप्रयोजन है। उसके किसी एक वाक्य को भी निरर्थक या गौण नहीं मानना चाहिये। वेदादि-शास्त्रों को भगवान् का वाङ्मय विग्रह माना जाता है। महाभारत तथा श्रीभागवत के सम्बन्ध में भी ऋषियों की वैसी ही धारणा है। भगवान् के वाङ्मय शरीर वेद, रामायण, भारत, भागवत में कोई नयी वस्तु डाल देना, वैसा ही अनिष्ट होगा, जैसे भगवान् के उपास्य विग्रह में काँटा चुभाना। उसमें से कुछ अंशों को प्रक्षिप्त कहकर निकाल देना भी वैसा ही अनिष्ट होगा, जैसे भगवान् के विग्रह से किसी अङ्गोपाङ्ग को पृथक् कर देना। ठीक उसी तरह रामचरितमानस भी भगवान् श्रीराम का विग्रह है, अतः उसमें नये अंश का सन्निवेश एवं विद्यमान अंशों का बहिष्करण भी पूर्वोक्त नीति से अनुचित होगा। रामचरितमानस का नियमित अनुष्ठान होता है। वह आज का पवित्र धर्म-ग्रन्थ है। अतः उसके किसी अंश को उपेक्षणीय या अपरिपक्व विचार की परिणति नहीं कहा जा सकता है।

श्रद्धा और अन्धविश्वास में यही अन्तर होता है कि वेदादि-शास्त्रों एवं तदनुसारी गुरुओं के वचन में विश्वास श्रद्धा है। अप्रामाणिक वस्तुओं में विश्वास अन्ध श्रद्धा है। यह ठीक है कि किसी एक प्रसङ्ग या कुछ पंक्तियों के आधार पर ही मानस का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, किन्तु सम्पूर्ण मानस के उपक्रम, उपसंहार की एकरूपता, अभ्यास, फल, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति का विचारकर उसका निष्कर्ष निकाला जा सकता है, तो भी उन कुछ पंक्तियों का भी समन्वय करना पड़ेगा। उन्हें उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह भी मानस का अङ्ग ही है। उसका भी अनुष्ठान होता है। पर यदि ऐसा न हो सका तो अवश्य ही उन कुछ अंशों एवं पंक्तियों का दुरुपयोग होगा। मानस वेद, रामायण, महाभारत, पुराण तथा धर्मशास्त्रों के समन्वयात्मक अध्ययन का ही परिणाम नहीं, किन्तु सम्प्रदायपरम्पराप्राप्त सुनिश्चित परिपक्व सिद्धान्त में परिनिष्ठित, प्रामाणिक अधिकृत साक्षात् भगवान् शङ्कर और हनुमान्‌जी महाराज का प्रसादस्वरूप है—

"सपनेहु साचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहउँ सब भाषाभनिति प्रभाउ॥" (रा० मा० १।१५)

अतः उसके आधार पर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धान्तों का विश्लेषण भी अनुचित नहीं, किं बहुना धर्मनीति, राजनीति तथा व्यवहारों के औचित्य अनौचित्य का विश्लेषण भी अनुचित नहीं।

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥" (रा० मा० ५।५८।३)

वस्तुतः उक्त पंक्ति भी निरर्थक नहीं, वह भी तुलसी-साहित्य की उपेक्षणीय वस्तु नहीं है। वह बटलोई के किसी कोने के कच्चे चावल के एक कण के समान नहीं है। यदि बटलोई के सब चावल पके हैं, तो एक चावल

के कच्चे रहने का प्रश्न ही नहीं उठता है। प्रकृत पंक्ति का स्पष्ट अर्थ यही था कि गँवार समुद्र से भगवान् राम ने नम्रतापूर्वक लङ्का जाने का मार्ग माँगा था, पर समुद्र पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। जब राम ने धनुष उठाकर शर-सन्धान किया, तब वह विनम्र होकर सामने आया और काम की बात करने लगा। अतः ऐसे स्थलों पर विनम्रता व्यर्थ होती है। वहाँ शर-सन्धान ही लाभदायक होता है। उस प्रसङ्ग में समुद्र ने ही गँवार आदि की बात कही, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी गँवारों, ढोलों, पशुओं तथा नारियों को ताड़ना देते रहना चाहिये। ढोल को निरर्थक कौन ताड़ता है—जहाँ दूसरे बाद्यों से स्वर मिलाना होता है वहीं हथौड़ी से ठोंक-ठोंक कर ढोल, तबला या मृदङ्ग का स्वर मिलाया जाता है। निरर्थक कोई भी ढोल को नहीं ठोंकता है। पशु का भी कोई सदा ताड़न नहीं करता है, किन्तु जब बैल को हल में या गाड़ी में चलाना होता है तब शिक्षा के लिये उसकी ताड़ना भी अपेक्षित होती है। इतना ही क्यों? भारतीय परम्परा में तो उपाध्याय (अध्यापक) अपने छात्रों को भी चपेटिका प्रदान करता है। वह भी उसके हित के ही लिए, अहित के लिए नहीं। उसका प्रमाद तथा असावधानी मिटाने के लिए। इसी तरह कभी नारी की भी ताड़ना अपेक्षित होती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख है कि स्त्री को भूषण-वसन देकर प्रसन्न कर के काम लेना चाहिये। यदि कभी उससे अनुकूल न हो तो उसे ताड़न कर के भी अनुकूल बनाना चाहिये—

"सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति।" (बृ० उ० ६।४।७)

अतः पति परिस्थिति विशेष में ताड़न कर सकता है, वैसा ताड़न स्त्री को अभीष्ट होता है। वह उसे बुरा नहीं मानती। किसी ने तो यह भी कहा है कि जो पति कभी ताड़न नहीं करता, स्त्री उससे सन्तुष्ट नहीं होती है। ताड़न और प्यार दोनों अपेक्षित हैं :

"कबहुँ न हँसि कर कर गह्यो कबहुँ न रिसि कर केस।
का कन्ता के घर रहे का भयो गये बिदेस॥"

जो पति कभी प्यार नहीं करता और कभी क्रोध नहीं करता, वह स्त्री की दृष्टि में उपयुक्त पति होने का अधिकारी ही नहीं है। शास्त्रों की दृष्टि से बालकों का ताड़न विहित है—

"लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥"

प्रथम पाँच वर्ष तक बालक का लालन करना चाहिये और दस वर्ष तक ताड़न करके उसे शिक्षित करना चाहिये। सोलहवें वर्ष से पुत्र के साथ मित्र का सा व्यवहार करना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रानुसार स्त्रियों का विवाह ही उपनयन है—

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासः गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥" (मनु० २।६७)

पति-कुलवास ही उनका गुरुकुलवास है। पतिसेवा ही गुरुशुश्रूषा है। शास्त्रानुसार रजोदर्शन के प्रथम ही उपनयनकाल में ही यह सब होना चाहिये। वह बाल्यावस्था ही होती है। उनका शिक्षण पति के द्वारा ही होता है। अतः जैसे माता-पिता तथा गुरु बालक का, सुशिक्षा के लिए ही, ताड़न करते हैं। उसी तरह पति भी सुशिक्षा के लिए स्त्री का ताड़न करता है। जैसे कोई बालकों का भी निरर्थक ताड़न नहीं करता, उसी तरह स्त्री का भी ताड़न निरर्थक नहीं। किन्तु शिक्षा की दृष्टि से आवश्यक होने पर ही उनका ताड़न विहित है। इसके अतिरिक्त एक ताड़न

शृङ्गाररस का अनिवार्य अङ्ग है। उसकी विशेष जानकारी "ऋग्वेद" के उर्वशी-पुरूरवा-संवाद से प्राप्त करनी चाहिये। जिस ताड़न को उर्वशी ने शर्त के रूप में रखा था।

ताड़न शब्द का प्रयोग केवल मारना, पीटना ही नहीं है, अनुशासन और डाँटना भी ताड़न है। प्रकृत में भी भिन्न भिन्न पात्रों में ताड़न एक जैसा नही कहा जा सकता है। ढोल के ताड़न का अर्थ हाथ से या हथौड़ी से स्वर मिलाना या कपड़ा लपेटे हुए छोटे काष्ठ के डण्डे से बजाना। गँवार का भी अर्थ अज्ञ होता है। शूद्र का भी अर्थ अशिक्षित शूद्र है। उसके ताड़न का अर्थ है। उसे शिक्षित करना। वैसे तुलसीदासजी ने निषाद, चित्रकूट के कोल, भिल्ल, किरातों का भी गुण-गान किया है. जो कि शूद्र से भी निकृष्ट कोटि के माने जाते थे। जिनकी छाया के स्पर्श से भी जल-प्रोक्षण किया जाता है—

"जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।" (रा० मा० २।१९२।२)

घोड़ा, बैल आदि पशु यदि ठीक नहीं चलते हैं तो उनका छोटे हलके डण्डे या चाबुक आदि से भी ताड़न किया जाता है या शिक्षण के लिए भी कुछ ताड़न करना पड़ता है। अतः पाँचों के लिए एक प्रकार का ताड़न नहीं हो सकता।

उक्त सन्दर्भ में यह भी नहीं भूलना चाहिये कि श्रीतुलसीदासजी ने मानस में नारी-जाति के बहुत अधिक सम्मान का वर्णन किया है—

"जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥" (रा० मा० २।५५।१)

अर्थात् यदि केवल पिता की आज्ञा है वन जाने की, तो माता को बड़ी मान कर तुम मुझ माता के आज्ञानुसार वन मत जाओ। यह मनुजी की उस उक्ति के अनुसार कहा गया है जिसमें उन्होंने पिता से सहस्रगुना माता का सम्मान करना कहा है—

"सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।" (मनु० २।१४५)

भगवती सुनयना, सुमित्रा, अनसूया, सीताजी आदि नारियों के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत कुछ कहा ही है। अरण्यकाण्ड में श्रीराम-नारद-संवाद में जो स्त्री-दोष का वर्णन है, वह शुद्ध वैराग्य के लिए ही और वह पुरुषों का भी उपलक्षण है। जैसे पुरुषों को परस्त्रियों से रागनिवृत्ति के लिए दुष्ट स्त्रियों का दोषानुसन्धान करके सावधान रहना चाहिये, उसी प्रकार स्त्रियों को दुष्ट पुरुषों का दोष जानकर सावधान हो स्वधर्म-निष्ठ होना चाहिये। इसी प्रकार मानस के प्रत्येक प्रसङ्ग को देश, काल, पात्र और परिस्थिति के सन्दर्भ में देखते हुए विचार करना चाहिये; तभी निर्णय में सुगमता सिद्ध होगी।

महाभारत केवल इतिवृत्त ही नहीं ज्ञानमय प्रदीप है

कहा जाता है कि "इतिहास यथार्थ घटना का वर्णन करता है, पर इससे व्यासजी को सन्तोष नहीं हुआ। इतिहास से राग-द्वेष ही बढ़ता है। एक-एक समाज या राष्ट्र इतिहास के कारण दुश्मन बन जाते हैं। उस राग-द्वेष की आँधी में पड़ी हुई नाव से किसी लक्ष्य पर नहीं पहुँचा जा सकता। अतः नारदजी के उपदेश से व्यासजी ने भावात्मक भक्ति का आश्रयण किया और सन्तुष्ट हुए। अतः जैसे शवच्छेदन के निष्कर्ष लेखरूप में उपयुक्त हो सकते हैं, पर उनका प्रदर्शन बीभत्स ही दृश्य उपस्थित करता है, उसी तरह इतिहास का निष्कर्ष लाभदायक हो सकता है, परन्तु स्वयं में वह बीभत्स ही होगा।"

(६) "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी"।

पाठकगण पहले शास्त्रीय विषयोंको पढ़ कर कुछ थकान प्राप्त कर चुके; आगे भी उन्होंने कुछ शास्त्रीय-विषय पढ़ने हैं, बीचमें कुछ सुगम विषय भी चाहियें; तभी इस पुष्पका 'हिन्दुधर्मके विविध-विषय' यह नाम भी सार्थक होगा। *स्त्री-शूद्रका विषय पहलेसे जारी भी है; तदनुसार यह प्रसिद्ध विषय रखा जाता है।

---

*स्त्री-शूद्रका साहचर्य धर्मशास्त्रोंमें देखिये—'स्त्री-शूद्रस्तु सकृत् सकृत्' (मनु. ५।१३९) 'स्त्री-शूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत' (११।२२३) 'स्त्री-शूद्र-विट्क्षत्रवधः' (११।६६) 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (पा. ८।२।८३) 'स्त्रियां न' (वा.) 'यदि स्त्री यद्यवरजः (शूद्रः) (मनु. २।२२३) 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः' (गीता ९।३२) इत्यादि।

(१) 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब (सकल) ताडनके अधिकारी' गोस्वामी श्रीतुलसीदासकी 'मानस'-स्थित यह चौपाई कुछ समयसे आलोचित हो रही है। आजकल स्त्री-शूद्रोंकी सहानुभूतिका युग आया हुआ है। आजकल एक भूसा बेचनेवाला भी अपनी दुकानपर भूसा खरीद रही हुई सुन्दर-स्त्रीका चित्र लगा देता है। शूद्र तथा अन्त्यज भी सुधारक अन्य-संस्थाओं तथा कांग्रेसकी कृपासे सिरपर चढ़ते चले आ रहे हैं। तब इन स्त्री-शूद्रोंसे विरुद्ध कोई बात किसी पुस्तकमें मिल जावे; तो आजकलके सुधारक उसे माननेको उद्यत नहीं होते, प्रत्युत उसके प्रणेताको खूब खरी-खोटी सुनाई जाती है। 'नमस्ते-प्रचार' ट्रैक्टमें उसके निर्माताने इसकेलिए गोस्वामीजीको खूब खरी-खरी सुनाई है। इस प्रकार कई शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्ण आर्यसमाजिन-लड़कियाँ भी इससे गोस्वामीजीकी खूब खबर लेती हुई दीखती हैं।

(२) परन्तु जो कई लोग 'रामायण'के प्रणयनसे गो० तुलसीदासजीकी प्रशंसाके पुल बाँधा करते हैं; वे इस उल्लेखसे गोस्वामीजीको डांटते तो नहीं; पर अपने बचावकेलिए कह दिया करते हैं कि—यह चौपाई गोसाईंजीकी बनी नहीं, यह तो प्रक्षिप्त है; क्योंकि—वे स्त्री-निन्दक नहीं थे—यह कहकर वे इस चौपाईसे अपना पल्ला सहज ही छुड़ा लिया करते हैं। बिना खण्डनका परिश्रम किये, बिना कुछ दिमागका पसीना बहाये, बिना बोतलकी स्याहीका कुछ खर्च किये 'यह प्रक्षिप्त है' कह देना खण्डनका बड़ा सुन्दर प्रकार है, 'न लगा रंग, न लगी फटकरी, रंग चोखा

होगया'। प्रतिवक्ता प्रत्युत्तरमें जो बकता रहे; उसे वे सुनते तक नहीं।

(३) वास्तवमें यहाँ प्रक्षिप्तता बताना तो निर्मूल है; क्योंकि-प्रकरणवश जहां-जहां गोस्वामीजीने स्त्री-शूद्रादिकी निन्दा की भी है, वहाँ-वहाँ कोई आधार भी उन्होंने रखा ही है, निराधार कुछ नहीं लिखा। जैसेकि—(क) 'का न करे अबला प्रबल' वर्षा ऋतुमें भगवान् राम लक्ष्मणको कहते हैं। इसका मूल-'अबला यत्र प्रबला:, बालो राजा, निरक्षरो मन्त्री। नहि-नहि तत्र धनाशा, जीवित-आशापि दुर्लभा भवति' यह एक प्रसिद्ध वचन है। इसमें स्त्रीको प्रबल कर (सिर चढ़ा) देनेसे जीवनकी आशाका भी समाप्त हो जाना लिखा है; जिसके उदाहरण राजा दशरथ हैं; कैकेयीको सिर चढ़ाना-उनके जीवनसमाप्तिका कारण बना। (ख) वर्षाऋतुमें भगवान् रामका लक्ष्मणको कहा यह वचन गो०जीने लिखा है—'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी'। इसका मूल-'न स्त्री स्वातन्त्र्य-मर्हति' (९।३-५-७) 'पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः। ...भर्तृष्वेता विकुर्वते' (९।१५) एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापति-निसर्गजम्' (९।१६) इत्यादि मनुवचन तथा 'स्वातन्त्र्येण विनश्यन्ति कुलजा अपि योषितः' (बृहत्पराशर. ४।५८) इत्यादि वचन हैं। (ग) 'नारि-सुभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं'॥ 'साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अविवेक, अशौच अदाया' इसका मूल निम्न वचन है-'अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता। निर्गुणत्वम् (निर्दयत्वम्) अशौचं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः'

(देवीभागवत १।५।८३, चाणक्यनीति २।१, हितोपदेश १।१९५, पञ्चतन्त्र-मित्रभेद)। 'शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम्। द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीणां मनु (प्रजापति) रकल्पयत्' (मनु. ९।१७) इत्यादि मनुस्मृति-आदि धर्मशास्त्रोंके वचन गोस्वामीजीके स्त्री-सम्बन्धी वचनोंके मूल हैं। (घ) इस प्रकार गो०जी ने अपराधिनी अहल्याको पतिद्वारा पत्थरपनेका शापरूप ताड़ना भी दिलाई है। सतीको महादेव-द्वारा अपने-उपास्य रामके दर्शनके निषेधको न मानने पर अन्तमें सतीदाहरूप दण्ड भी दिलाया है। इस प्रकार उक्त चौपाईकी प्रक्षिप्तता तो खण्डित होगई।

(ङ) इसी प्रकार स्त्रीके स्वभावके विषयमें गो०जीके अन्य वचन भी द्रष्टव्य हैं—'जदपि सहज जड़ नारि अयानी' 'हँसिह हुँ सुनि हमरी जडताई' यहाँ पर पार्वती स्त्रियोंकी प्रतिनिधितासे उनकी जडता बताती है। इसका मूल वेद-वचन हम आगे लिखेंगे। (च) इस प्रकार अनसूया श्रीसीताको कहती है—'सहज अपावन नारि'। 'राखिय नारि जदपि उर मांही। जुवती सास्त्र नृपति बस नांही' (अरण्यकाण्ड) यहाँ स्त्रीका दूसरेके बस न हो सकना कहा है। इस पर वेद-वचन आगे देखिये।

(छ) भरत स्त्रियोंके विषयमें विचारते हैं—'विधिहु न नारि-हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी'। इसके मूल वचन—'स्त्रीणां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' 'मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं स्मृतम्' इत्यादि हैं। (ज) 'अवगुन-मूल शूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि' यह श्रीराम के प्रति श्रीनारद-

का वाक्य है। (झ) 'नारि सहज जड अज्ञ' यह सतीका वचन है।

(ञ) 'जदपि जोषिता अनअधिकारी' यहाँ स्त्रीको वेदमें *अनधिकारिणी बताया है–इसका मूल 'निरिन्द्रिया अमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः' (९।१८) यह मनुका वचन है।

---

*कई व्यक्तियोंका विचार है कि–'वेदमें जब स्त्री और शूद्र शब्द तथा उनके कर्तव्य आते हैं; तब यदि स्त्री–शूद्रोंका वेदाधिकार न होगा; तो उनको अपने–कर्तव्यका ज्ञान कैसे होगा? अतः स्पष्ट है कि–स्त्री–शूद्रका वेदमें अनधिकार नहीं, इस पर वक्तव्य यह है कि–वेदमें स्तनपायी बच्चों तथा पशु–पक्षियोंके नाम तथा उनके कर्तव्य भी आते हैं; तब क्या इससे उनको भी वेदाधिकार हो जावेगा? 'अनड्वान ब्रह्मचर्येण अश्वो घासं जिगीर्षति' (अथर्व. ११।५।१८)में घोड़े एवं बैलका कर्तव्य बताया गया है। 'उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपि कक्ष आसनि' (ऋ. ४।४०।४) यहां घोड़ेका गर्दन बगल तथा मुँहमें लगाम आदिसे बन्धे जानेका कर्तव्य आया है। 'वोढाऽनड्वान' (यजुः २२।२२) इत्यादि भी। ओषधियोंके कर्तव्य भी बताये गये हैं। इसी प्रकार छोटे बचोंके भी जातकर्म–चूड़ाकरण–कर्णवेधादिसंस्कारोंमें भी उनके कर्तव्य बताये गये हैं; तब इससे क्या घोड़े-बैल आदि पशुओं तथा छोटे-बच्चोंका भी वेदमें अधिकार हो जाएगा? नहीं, किन्तु उन बच्चोंके पिता आदि तथा घोड़ों–बैलोंके स्वामी आदि उनके कर्तव्योंको वेदादिसे जानकर उनसे वह कर्तव्य करा लेते हैं, इस प्रकार पति स्त्रियोंसे तथा द्विज शूद्रादिसे वे कर्तव्य करा ही लेते हैं; उन्हें वेदके अधिकार न होने पर भी उनकी कोई हानि वा वेदविरोध नहीं होता। घोड़े आदि स्वयं बगल वा मुंहमें तंग-लगाम आदि नहीं डाल लेते–उनके स्वामी सब उनसे करा लेते हैं, वैसे प्रकृतमें भी समझ लें। इस प्रकार इस युक्तिसे स्त्री–शूद्रका वेदाधिकार सिद्ध नहीं हो जाता।

(ट) 'अधमसे अधम अधम अति नारी' यह भी स्त्री-जातिके विषयमें गोस्वामीजीकी चौपाई है; तब नारीकी ताडनीयताकी चौपाई भी गोस्वामीजीकी क्यों न होगी? यह चौपाई भी निर्मूल नहीं है, इसका मूल भी कृष्णयजुर्वेदमें मिलता है। जैसेकि-'तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीरपि पापात् पुंस उपस्तितरं वदन्ति' (तै. सं. ६।५।८।२) इसका अर्थ श्रीसायणाचार्यने यह किया है-'तस्माल्लोके स्त्रियः सामर्थ्यरहिताः, अपत्येषु दायभाजो न भवन्ति। पापात्-पतितादपि पुंसोपि, उपस्तितरं-क्षीणतरं स्त्रीस्वरूपं वदन्ति' यहाँ पर स्त्रीको स्वकर्म-पतित पुरुषसे भी *अधम कहा

*कई व्यक्ति 'उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी। अदेवत्राद् अराधसः' (ऋ. ५।६१।६) इस मन्त्रसे स्त्रीको पुरुषसे श्रेष्ठ बताते हैं; उन्हें जानना चाहिये कि-यह मन्त्र देवपूजन न करनेका निन्दार्थवाद है, इसका अर्थ है कि-देवताओंकी पूजा न करनेवाले और देवताके निमित्त धन-दान न देने वाले पुरुषसे देवताओंकी ओर मन लगाने वाली स्त्री भी श्रेष्ठ है। अर्थवादमें विवक्षित अंशमें तात्पर्य हुआ करता है, शब्दोंके अर्थमें तात्पर्य नहीं हुआ करता। इसका इतना ही तात्पर्य है कि-पुरुषको देवपूजा तथा देवनिमित्तक धन-दान करना चाहिये। इसी अर्थवादसे उलटा स्त्रीकी पुरुषकी अपेक्षा निम्नता स्पष्ट हो रही है; नहीं तो ऐसी शब्द-योजना न होती। जैसे कहा जावे कि-'परोपकार न करने वाले मनुष्यसे पशु भी श्रेष्ठ है, जो किसीके काम आ जाता है'। इससे मनुष्यसे पशुकी श्रेष्ठता नहीं हो जाती; किन्तु इससे परोपकारका प्रशंसार्थवाद, और परोपकार न करनेवाले पुरुषका निन्दार्थवाद सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार प्रकृत मन्त्रमें भी समझना चाहिये।

गया है। इस प्रकार जब स्त्री-निन्दा गो०जीने बहुतसे स्थलोंपर की है, उसमें धर्मशास्त्र आदिके वचनोंकी साक्षी भी है, तब स्त्रियोंकी ताडनाधिकारिता गो०जीसे इष्ट सिद्ध हुई, अनभीष्ट नहीं; तब मानसमें उक्त चौपाईकी प्रक्षिप्तता खण्डित होगई।

(४) जो इससे भी बढ़कर गो० तुलसीदासजीके श्रद्धालु हैं, इधरसे जिन्होंने इस युगकी विचारधाराको भी अपनाया हुआ है, वे यहां प्रक्षिप्तता न कहकर उसका पाठ ही बदल देते हैं। (क) कई लिखते हैं कि "ढोल, गँवार, मूढ, पशु, नारी।" इस पाठमें वे 'शूद्र'को उड़ाकर उसके स्थानमें 'मूढ'का अभिषेक कर डालते हैं, और उस पाठको गोस्वामीजीका कह देते हैं। 'गँवार' और 'मूढ'की पुनरुक्ति भी उन्हें प्रतीत नहीं होती। (ख) इस प्रकार दूसरे शूद्र-सहानुभूतिकर्ता "ढोल, गँवार, छुद्र, पशु, नारी। सकल ताड़नाके अधिकारी' यहां शूद्रके स्थान 'छुद्र (क्षुद्र) कर देते हैं, यहां भी गँवार और क्षुद्रकी पुनरुक्ति पहलेकी ही भांति रहती है। 'शूद्र' कहनेमें तो वह दोष नहीं रहता। (ग) कई महाशय "ढोल, गँवार-शूद्र, पशु-नारी" यह पाठ लिखकर 'गँवार' शब्दको 'शूद्र' का विशेषण बनाकर, 'पशु' शब्दको 'नारी'का विशेषण बनाकर उक्त तीनोंको ताड़नाका अधिकारी बना देते हैं। परन्तु यह भी व्यर्थ है; क्योंकि विशेषण सदा साभिप्राय होता है। तब यह विशेषण केवल शूद्र और नारीके ही क्यों हों? तब तो गँवार-त्रैवर्णिक और पशुसदृश-पुरुष ताड़नाके अधिकारसे बहिर्भूत हो जाएँगे। तब भी गो.जीके मतमें शूद्र और नारी ताड़नाके

अधिकारी ही रहे। इससे वादियोंकी ही हानि हुई–'भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधिः' (लहसुन खाया, फिर भी बीमारी न गई) पाठ बदलने पर भी उन्हें कोई लाभ न मिला। (घ) कई महाशय "ढोल, गँवार शूद्र, पशु-नारी। ये चारों ताड़न अधिकारी" यह पाठ गढ़कर 'नारी'का 'पशु' विशेषण बनाकर 'चारों'को ताड़ना का अधिकारी बतलाते हैं। (ङ) कई महाशय "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु-नाड़ी।" यह पाठ कल्पितकर 'नाड़ी'का अर्थ 'अनाड़ी' करके उसे विशेषण तथा 'पशु'को विशेष्य बना डालते हैं, (च) कई लोग पाठ तो 'पशु नारी' ही मानते हैं, पर नारीका प्रयोग 'नाड़ी'केलिए मानते हैं। उनका अभिप्राय है कि 'कर जोड़ी' आदिके स्थानमें गोस्वामीजी 'कर जोरी' आदि लिखते हैं, अर्थात् ड़'को 'र' लिखते हैं, इसी प्रकार 'नाड़ी'के स्थान पर भी उन्होंने 'नारी' लिखा है। 'नाड़ी'का अर्थ 'अनाड़ी' है, वह 'पशु'का विशेषण है। 'अनाड़ी पशु' ताड़नाका अधिकारी है, यह अर्थ करके वे 'नारी' (स्त्री)को सर्वथा उड़ा ही दिया करते हैं। ऐसे लोग इस प्रकार अपने पक्षको भी सिद्ध करते हैं; गोस्वामीजीको भी निर्दोष सिद्ध कर दिया करते हैं। हम जैसोंको–जो उक्त चौपाईका यथाश्रुत अर्थ करते हैं–'सङ्कीर्ण-विचारवाला' कहकर धता बता दिया करते हैं।

(५) हम इसपर कुछ मीमांसा उपस्थित करते हैं। 'आलोक'-पाठक इधर अवहित होंगे। उक्त चौपाई सुन्दरकाण्डके अन्तमें 'मानस'में आयी है। वक्ता समुद्र, भगवान् रामको इससे अपनी ताड़नीयता बतला रहा है। 'पशु-नारी'का 'अनाड़ी पशु' अर्थ

बतलाना तो सचमुच विचित्र है। 'नारी'का 'नाड़ी' और 'नाड़ी' का 'अनाड़ी' अर्थ मालूम नहीं कि वे किस आधार पर करते हैं, और फिर उसे 'पशु'का विशेषण बना देना तो और भी निर्मूल है। ऐसे पुरुष स्त्रीजातिके साथ ऐसी सहानुभूति करते हैं कि 'नारी'को शब्दसे तो नहीं, पर अर्थदृष्टिसे तो उड़ा ही देते हैं। पर आजकलके जो लोग स्त्रीजातिसे सहानुभूति रखते हैं, वे शूद्रसे भी सहानुभूति रखते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि फिर वे शूद्रको ताड़नाधिकारियोंमें कैसे गिन लेते हैं ? ऐसा होने पर वे राष्ट्रिय-शासकोंके बजुर्ग श्री बापूजीके अनुयायियोंकी अदृश्य-कोपाग्निमें पतङ्गा बन सकते हैं। अथवा उक्त शासन अपने 'रामराज्य'में 'शास्त्रीय-स्पृश्यास्पृश्यता'की तरह 'मानस'की इस चौपाईको भी 'कानून' बनवाकर बन्द करा सकता है—यह वे नहीं जानते। अथवा वैसे महाशय फिर 'बापूजी'के अनुयायियोंके इस अवसर पर सुलभ-आशीर्वाद प्राप्त करनेकेलिए 'शूद्र'का अर्थ-परिवर्तन करनेका सरतोड़ प्रयत्न करें, कोषोंमें लंगोट पहनकर कूद पड़ें, 'शूद्र'का अर्थ बदलकर ही दम लें।

अथवा जैसे वे 'पशु-नारी'को एक शब्द बना लेते हैं, वैसे ही 'गंवार-शूद्र' इस शब्दको भी एक बना लें और उसका 'मूर्ख-शूद्र' अर्थ बना लें। यदि 'मूर्ख-शूद्र'को भी ताड़ना 'बापूजी'के ईश्वरीय आदेशसे विरुद्ध हो; तो 'शूद्र'का ही 'मूर्ख' अर्थ करके 'गंवार'का अर्थ 'गांवका रहनेवाला' कर दें। तब 'नारी'की तरह 'शूद्र' भी ताड़नासे पृथक् हो जायगा।

(ख) जो लोग 'नारी'को उड़ाना तो नहीं चाहते; पर उसके साथ सहानुभूति भी रखते हैं, वे 'पशु-नारी' इस शब्दको विशेषण-विशेष्य बनाकर 'पशुकी तरह मूर्खा नारी' यह अर्थ करके उस मूर्खाको ताड़नाके योग्य सिद्ध करते हैं, सर्वसाधारण-नारीको नहीं। हम उनकी बुद्धिकी प्रशंसा करते हैं, पर यह अवश्य कहते हैं कि वे ग्रन्थकारकी बात मानें या न मानें, यह उनकी इच्छा; पर उन्हें उचित है कि अन्यका अर्थ उसकी इच्छाके विरुद्ध न बदलें। ऐसा अर्थ करने पर फिर स्त्री-पुरुष तो ताड़नाके अधिकारी रहेंगे; चाहे वे मूर्ख क्यों न हों, परन्तु फिर 'पशु' ताड़नाका अधिकारी न रहेगा, क्योंकि उन्होंने तो 'पशु'का अर्थ ही बदल दिया। 'मनुष्य'को ताड़नाका अधिकारी मानना और 'पशु'को वैसा न मानना यह नैयायिकोंकी दृष्टिमें असह्य हो जायगा। अतः उन्हें विवशतासे अपना अर्थ अशुद्ध स्वीकृत करना पड़ेगा।

(ग) जो कई 'ढोल, गँवार, मूढ अरु नारी' यह पाठ बनाते हैं; उन्हें याद रखना चाहिये कि एक तो यह रामायणके किसी संस्करणमें नहीं, दूसरा यहां 'गँवार' तथा 'मूढ'को पृथक्-पृथक् कहनेसे व्यर्थकी पुनरुक्ति हो जाती है। शूद्र-शब्द तो एक जन्मजात निम्न वर्णका नाम है, वही गोस्वामीजीको यहां विवक्षित है। (घ) जो लोग 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु-नारी। ये चारों—' यह पाठ कल्पित करते हैं, वह भी ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा पाठ रामायणके किसी संस्करणमें है ही नहीं; फिर तो कोई शूद्रका सहानुभूतिकर्ता 'ढोल, गँवार-शूद्र, पशु-नारी, ये तीनों ताड़न अधिकारी' यह पाठ

भी बना सकता है, और फिर इस पाठमें भी दोष आता है—तब तो वक्ता 'समुद्र'से भी इस चौपाईका मेल नहीं पड़ता। 'गँवार' होनेसे तो उसका ग्रहण हो भी सकता था; क्योंकि—'गगन, समीर, अनल, जल, धरनी। इन्हके नाथ सहज जड़ करनी।' यह गो० जीने समुद्र द्वारा कहलवाकर उसकी जड़ता (गँवारपन) बताई है। पर 'गँवार-शूद्र' से तो उसका भी ग्रहण नहीं हो सकता, क्योंकि—समुद्र शूद्र-वर्ण मनुष्य नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि ये सब पाठ तथा अर्थ जहां गो० तुलसीदासजीके अभिप्रायसे विरुद्ध एवम् अमौलिक हैं, वहां दोषपूर्ण भी हैं।

(ङ) 'नारी' शब्दका 'अनाड़ी' अर्थ करना और उसे 'पशु'का विशेषण बना देना तो नितराम् अशुद्ध तथा असम्बद्ध एवं निराधार है। गोस्वामीजीने 'जोड़ी' 'थोड़ी'के स्थान पर तो 'जोरी, थोरी' यह पढ़ा हो, यह तो सम्भव है; पर 'नाड़ी'के स्थानमें 'नारी' उन्होंने कहीं नहीं पढ़ा, न ही उनका कोई ऐसा प्रमाण कहीं मिला है; और फिर गोस्वामीजीका ऐसा प्रमाण मिलना तो 'शशशृङ्ग' है, जहां उन्होंने उसी 'नारी'का 'अनाड़ी' अर्थ रखा हो। अन्य बात यह है कि 'अनाड़ी'को 'पशु'का विशेषण बनाना भी व्यर्थ ही है; क्योंकि पशु सदा 'अनाड़ी' ही होता है। यदि कहा जाय कि घोड़े आदि पशु तो 'अनाड़ी' नहीं होते; न सही, पर क्या वे ताड़ना नहीं पाते? तब यह अर्थ ठीक न हुआ; अथवा यही कहिये कि गोस्वामीजीको यह अर्थ इष्ट नहीं।

(६) वस्तुतः 'ढोल गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब' यहां पर

'ये सब' शब्दसे 'ये पांचों' पृथक्-पृथक् अभीष्ट हैं। गोस्वामीजीके अनुसार ये पांचों ताड़नाके अधिकारी हैं। 'ढोल' तो ताडनाका अधिकारी प्रसिद्ध ही है, इसमें किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं। 'गँवार'से 'अज्ञानी' वा जड़ विवक्षित है, जिसमें प्राकरणिक 'समुद्र' भी सन्निविष्ट हो जाता है। 'शूद्र' शब्दसे त्रैवर्णिकसे भिन्न शूद्रादि-निम्नजातीय इष्ट हैं। 'पशु' शब्दसे 'गदहा' आदि जीव गोस्वामीजोको विवक्षित हैं; और 'नारी' शब्दसे गोस्वामीजी को 'स्त्री' अभीष्ट है। 'नारी' का 'स्त्री' अर्थ स्वीकार करनेसे तो आजके सभ्य-संसारका डण्डा हमारे सिर पर भी पड़ेगा कि 'ऐँ स्त्री भी ताड़नाकी अधिकारिणी? राम राम! अनर्थ एवं अन्याय!!

इस पर हम कहते हैं कि सभ्यगण! अधीर मत हूजिये। धैर्यसे सुनिये। गोस्वामी तुलसीदासजी पहले स्त्रीके असीम-प्रेमी थे यह उनके नैश-अभिसारसे प्रकट है, वहां उन्होंने वर्षाके जलसे भरी नदी, अन्धेरी रात तथा मार्गकी भीषणता-इनको नगण्य मान लिया। परन्तु उनको जब उस स्त्रीने प्रेमके स्थान डांटा; तब उनकी आंखें खुल गयीं। उस दिनसे ये स्त्रीको उसीके कहनेसे 'अस्थिचर्ममय देह' समझने लगे। 'स्त्री को उस दिनसे 'रामपथका कण्टक' समझने लगे। तब वे उससे पृथक् होगये। उस दिनसे उन्होंने जान लिया कि—'न स्त्रैणस्य स्वर्गप्राप्तिधर्मकृत्यं च' (चाणक्यसूत्र ३१६) 'अलोहमयं निगलं कलत्रम्' (३५५) 'स्त्री नाम सर्वाऽशुभानां क्षेत्रम्' (४७८) 'अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः' (४७६) अर्थात् स्त्री बिना लोहेकी बेड़ी है। मोक्षपथके पथिककेलिए वह

'एषा कण्ठतटे कृता खलु शिला संसारवारां निधौ' संसारसमुद्रमें स्नान करनेके समय गलेमें पहरी हुई बड़ी भारी शिला है। इसीलिए स्वा॰ शंकराचार्यको भी लिखना पड़ा कि—'विश्वासपात्रं न किमस्ति ? नारी ।' 'द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी'। 'किं तद् विषं भाति सुधोपमं यत् ? नारी'। 'विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा ? नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः'।

कई आर्यसमाजी आदि यह लिखनेसे शङ्करस्वामीकी ही निन्दा करते हैं; पर यह उनका अज्ञान है। भोगी लोग तो स्त्रीकी प्रशंसा ही करेंगे; पर संन्यासी तथा योगी एवं मुक्तिपथके पथिक उसकी निन्दा ही करेंगे; स्वामी शङ्कराचार्य थे संन्यासी। संन्यासीकेलिए 'नारी' स्पष्टतया 'नरकका द्वार' है। संन्यासी तो दूर, यदि गृहस्थी भी उसमें लिपटा रहे; तो वह नरकको ही उपार्जित कर रहा होता है। उसे छोड़नेसे ही तो गो॰ तुलसीदासका उद्धार हुआ। जब स्वा. शङ्कराचार्यने श्रीमण्डनमिश्रको हराकर उसे अपना शिष्य बना लिया; तब उनका स्त्रीसे सम्बन्ध हटवा दिया; क्योंकि—संन्यासी वा मुक्तिपथके पथिककेलिए स्त्री अविश्वसनीय, विष-सम्पृक्त अन्न एवं पिशाची हैं। तभी तो संन्यासोपनिषत्में कहा है—'सुजीर्णोऽपि (वृद्ध भी) सुजीर्णासु विद्वान् स्त्रीषु न विश्वसेत्' (६८) 'न सम्भावयेत् स्त्रियं काञ्चित् पूर्व-दृष्टां न च स्मरेत्। कथां च वर्जयेत् तासां न पश्येल्लिखितामपि' (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ४।३) एतच्चतुष्टयं मोहात् स्त्रीणामाचरतो यतेः। चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात् प्रणश्यति' (४) इसलिए मनुस्मृतिमें कामज' दश

गणोंमें स्त्रियां भी परिगणित हैं (७।४७) 'पानमक्षाः स्त्रियश्चैव... एतत्कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे' (७।५०) इनमें स्त्रीको मनुजीने कष्टतम माना है। तभी स्वा.द.जी जब स्वा.विरजानन्दजीके पास पढ़ते थे; उनके सन्ध्या कर रहे होनेपर एक स्त्रीनें उनके चरणोंको सिरसे छू दिया; स्वामीजीने इस पर तीन दिन-रात उपवास किया। इसे सुनकर स्वामी विरजानन्द रोमांचित हो गये। (श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश, वैराग्यकाण्ड नवमसर्ग पृ. ५६ पं. २६) वह स्त्री कोई अछूत तो थी नहीं; पर ब्रह्मचारी तथा संन्यासी अथवा परमार्थपथके पथिकके लिए स्त्री सचमुच पिशाची है, 'हालाहल विषका भरा कनक-घट जैसे' है। उस अवस्थामें उस पर थोड़ा विश्वास किया कि-नरकका द्वार खुला। वादियोंके स्वामी लिख गये हैं—'स्त्रियोंको प्रिय वह होता है जो स्त्री-भोगमें फंसा हो (स.प्र. ११ पृ. २३४) 'पुरुषसे स्त्रीकी कामचेष्टा अधिक होती है' (स.प्र. ११ पृ. २३६)। इसलिए मुक्तिके पथिकको उसे छोड़ देना पड़ता है; उससे पीठ फेर लेनी पड़ती है। विवाहमें स्त्रीके साथ अग्निकी चार परिक्रमा करनी पड़ती हैं; यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी मानी जाती हैं। पहले त्रिवर्गकी परिक्रमामें स्त्री आगे की जाती है, चौथी मोक्षकी परिक्रमामें वर उसे अपनी पीठके पीछे कर देता है। मनु (८।७७) जीके अनुसार स्त्री अस्थिर-बुद्धि होनेसे भी 'विश्वासपात्र' सिद्ध नहीं होती।

नारदपरिव्राजकोपनिषद्में लिखा है—'माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति। तस्माद् दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत्'

(६।३१-३२), 'चाण्डलवाटिकामिव स्त्रियम्' (७।१) 'पदापि न स्पृशेद् योगी योषितं दारवीमपि ।...यतिः संगेषु बध्यते' । अतः जहां नारी-निन्दा आई है, वहां गृहस्थव्यतिरिक्त तीन आश्रमोंके विषयमें समझना चाहिये । तब प्रश्नोत्तरीमें उक्त बातें कहते हुए आचार्य-शङ्करका इसमें कोई दोष नहीं कहा जा सकता; क्योंकि—वे संन्यासी थे। यही बात जानकर मोक्षपथके पथिक, रामके पुजारी गोस्वामीजीने 'नारी'को प्रेमकी अधिकारिणी न मानकर उसे 'ताडनाकी अधि-कारिणी' माना हो; जैसेकि 'लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः' (चाणक्य. २।१२) तो इसमें आश्चर्यका क्या अवकाश ? तब फिर अर्थ बदलनेका इसमें प्रश्न ही नहीं उठता। ग्रन्थकार स्वाभिलषित भावोंको समय-समय पर ऐतिहासिक-पात्रोंके मुखसे कहलवाया करता है, यह स्वाभाविक है। इसलिए उन्होंने पात्र-विशेषके द्वारा 'अधमते अधम अधम अति नारी' कहलवाया। तब नारीका स्त्री-अर्थ उनके आशयसे विरुद्ध न हुआ।

(ख) इस बातको कोई महोदय न मानें; तब उन्हें जानना चाहिए कि गो०जीको 'ढोल गँवार शूद्र पशु तथा नारी' इन्हें किसी के अधीन रखना इष्ट है। जब ऐसा है; तब अधीन हुआ व्यक्ति कार्यको ठीक-ठीक न करने पर ताड़नाको ही तो प्राप्त करता है। शिष्य गुरुके अधीन होता है। अधीन होनेसे सम्यक् कार्य न करनेसे उसे भी ताड़ना प्राप्त करनी ही होती है। इस प्रकार पिता द्वारा पुत्रको भी। श्रीचाणक्यका यह वचन प्रसिद्ध है—'तस्मात् शिष्यं च पुत्रं च ताडयेन्न तु लालयेत्'' (२।१२)। इसी तरह 'ढोल'

भी स्वामीके अधीन होता है, गँवार भी अपने किसी सम्बन्धीके अधीन होता है, शूद्र भी तीन वर्णोंके अधीन होता है, पशु भी अपने स्वामीके अधीन होता है, नारी भी अपने पतिके अधीन होती है. अपने कर्तव्यकी प्रच्युतिमें इनको ताडना प्राप्त करनी ही पड़ती है, और वह उचित भी है।

(ग) एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि गो०जीने 'ये सब ताड़नके अधिकारी' यह तो लिखा; पर उक्त चौपाईमें 'सदा' शब्द साथ नहीं दिया कि सदा इन्हें पीटते ही रहो। उक्त चौपाई में 'ढोल' तथा 'पशु' शब्द भी हैं। तब क्या इनको सदा ही पीटा जाता है? नहीं। इनकी समय पर ताडना होती है; जब ये कार्यमें त्रुटि करें, अथवा स्वामीकी आज्ञा न मानें। चलते हुए बैलको कोई नहीं पीटता। ढोल स्वर जब ठीक नहीं देता; तब उसे तपाया भी जाता है; किनारे पर बांटसे उसे पीटा भी जाता है। फिर शब्दकेलिए उसे ताडित भी किया जाता है, क्योंकि ताड़ना किये बिना वह शब्द ही नहीं करता। इस प्रकार पशु जब प्रगतिमें रुकता है; तब उसे भी ताडना मिलती है। खेतोंमे जाकर देखिये। इस प्रकार ये सब विशिष्ट अवसरपर ही ताडित होते हैं, सदा नहीं। पड़े ढोलको कोई नहीं पीटता। प्रत्युत-समुद्रकी भी हठ पर ताडना हुई, सदा नहीं होती।

(घ) इस प्रकार 'शूद्र' तथा 'नारी'केलिए भी समझना चाहिए। नारी पतिके अधीन होती है। तब उसे भी कार्य न करने पर ताडना पानी ही पड़ेगी। स्त्री-पक्षपाती स्वा. द. जी भी 'सत्यार्थप्रकाश'

में कह गये हैं—"प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है" (पृष्ठ ४७) तब तीक्ष्णताकालमें ताड़ना उसकी स्वाभाविक है। इधर 'त्रियाहठ' भी प्रसिद्ध है। उस हठके हटानेका उपाय भी ताड़ना है। स्त्रियोंके आदरमें लगे भी अँग्रेजोंके श्रेष्ठ-कवि 'शेक्सपीयर'ने 'कर्कशा स्त्रियोंके सुधारनेकी विधि' नामक एक नाटक लिखा है। उसमें प्रकारान्तरसे उपाय ताड़ना ही बतलाया है। जब ऐसी बात है; तब 'नारी'का 'नाड़ी' और 'नाड़ी'का 'अनाड़ी' अर्थ करना अयुक्त है। 'नाड़ी'का अर्थ 'नब्ज़' (धमनी) तो हो सकता है, पर 'अनाड़ी' नहीं। गो० तुलसीदासजीने 'अनाड़ी'के अर्थमें 'नारी' शब्द कहीं प्रयुक्त नहीं किया।

(ङ) इसके अतिरिक्त 'भय बिनु होत न प्रीत' यह गो०जीने कहा है, तब ताड़ना आदिके भयसे स्त्री पतिके प्रेममें भी लगी रहेगी, क्योंकि-'अमर्ष-शून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः' (किरातार्जुनीय १।३३) (क्रोधसे रहित पुरुषसे न कोई डरता है; न उससे कोई प्रेम करता है)। पति स्त्रीमें कभी अमर्षका व्यवहार न करे; तो न पत्नी पतिसे डरेगी, न उसमें प्रेम करेगी।

(७) अन्य बात यह है कि गोस्वामीजीने अपनी रामायणकेलिए उसके आरम्भमें कहा है—"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्, रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि" (१।७) अर्थात् 'रामचरित-मानस'में मैंने वेद, शास्त्र, पुराण आदि-सम्मत बातें कहीं हैं। तब वेद-पुराण आदियोंका अवगाहन भी करना पड़ेगा, कदाचित् उक्त

चौपाई गोस्वामीजीने वेद-पुराण आदिके आधार पर कही हो? ऐसा सिद्ध हो जाने पर फिर गोस्वामीजी अपने उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जायँगे। अब आइये पाठक! जरा वेद, पुराण, शास्त्र आदिके पन्ने टटोलें। वेदके दो भेद हैं, मन्त्रभाग तथा ब्राह्मण-भाग। ब्राह्मणभागमें उपनिषद् तथा आरण्यक साथ आ जाते हैं।

(क) पहले इस विषयमें मन्त्रभागके प्रमाण देखिये। ऋग्वेद-संहितामें एक मन्त्र आया है कि 'स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम्" (शा. सं. ८।३३।१७) अर्थात् स्त्रीके मन पर शासना नहीं की जा सकती। उसकी बुद्धि वा कर्म क्षुद्र होता है। (ख) यहाँ पर सुप्रसिद्ध-भाष्यकार श्रीसायणके भी शब्द देखिये—"स्त्रिया मनः-चित्तम्, अशास्यं-पुरुषेण अशिष्यं-शासितुमशक्यं, प्रबलत्वादिति। उतो-अपि स्त्रियाः क्रतुं-प्रज्ञां रघुं-लघुम् अह-आह। (ग) यहाँ पर आर्यसमाजके पण्डित श्रीपाददामोदर-सातवलेकरजीका अर्थ उनके बनाये ऋग्वेदके सुबोध-भाष्य 'मेधातिथिके दर्शन' ७२ पृष्ठमें देखें—"स्त्रियोंके मनको संयममें रखना कठिन है, स्त्रियोंके मन पर काबू करना अशक्य है। स्त्रियोंके कर्म छोटे होते हैं, उनका सामर्थ्य कम होता है, उनकी बुद्धि छोटी होती है।"

(घ) पञ्चतन्त्रमें भी उक्त वेदमन्त्रको मनमें रखकर यह उसका अनुवाद दिया गया है—'भद्र! शास्त्रविरुद्धमेतद् यत्-स्त्रिया सह मन्त्रः, यतस्ताः [स्त्रियः] स्वल्पमतयो भवन्ति' (अपरीक्षितकारक, मन्थरक-कौलिककी कथामें)। जब ऐसा है तो उक्त वेदमन्त्रमें भी 'रघु' शब्दका अर्थ 'लघु' (छोटा) ही है; (ङ) तब 'श्रुतस्य यायादय-

मन्तमर्भकः, तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः। अवेत्य धातोर्गमनार्थमर्थवित् चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम्' (३।२१) इस रघुवंशके पद्यके अनुसार 'स्त्रीका मन ज्ञानविषयमें शीघ्रगामी होता है, स्त्रियोंका क्रतु-ज्ञान विषयके अन्ततक जानेवाला होता है, इससे उनकी बुद्धिकी तीव्रता आदि सूचित होती है, न कि हीनता—' ऐसा किन्हींका अर्थ निरस्त हो गया, क्योंकि—उक्त मन्त्रमें वह अर्थ विवक्षित नहीं—यह पूर्वोत्तरमन्त्रोंके संवादसे प्रत्यक्ष है। ऐसा मानने पर तो फिर पुरुषों की बुद्धि-मन्दता माननी पड़ेगी; अथवा दोनोंकी बुद्धिकी समतामें 'स्त्री' शब्दका कहना व्यर्थ हो जावेगा।

(च) 'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता' (ऋ. १०।९५।१५) इत्यादि अन्य मन्त्रोंकी साक्षीसे भी 'रघु'का अर्थ 'लघु' 'स्त्रीकी बुद्धि छोटी होती है' यह है। (छ) यदि वहां 'लघु'का अर्थ 'शीघ्र' मानें; तो स्त्रोकी बुद्धिकी चंचलता-अस्थिरता सिद्ध हो जावेगी। जैसे कि मनुजीने भी कहा है—'स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु' (८।७७) इसका अर्थ आर्यसमाजी श्रीतुलसीराम-स्वामीने लिखा है—'स्त्रीकी बुद्धि स्थिर नहीं हुआ करती'। तब भी स्त्री-निन्दा ही सिद्ध होगी, तभी तो चतुर लोग स्त्रीको ठग लिया करते हैं। (ज) 'वेदामृत' (प्र. सं. ३५४ पृ.)में ऋ.सं. (४।५।५ मन्त्र)के आशयमें प्रमुख-आर्यसमाजी श्रीशिवशंकरकाव्यतीर्थने लिखा है—'जिस हेतु स्त्रियोंको बहकानेवाले बहुत पुरुष होते हैं; इस हेतु उन्हें (स्त्रियोंको) कभी स्वतन्त्र छोड़ना उचित नहीं'। इससे भी वेदानुसार स्त्रीकी बुद्धिकी मन्दता वा अस्थिरता स्पष्ट है; तब स्त्रीकी अस्थिरता दूर

मन्तमर्भकः, तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः। अवेद्य धातोर्गमनार्थमर्थवित् चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम्' (३।२१) इस रघुवंशके पद्यके अनुसार 'स्त्रीका मन ज्ञानविषयमें शीघ्रगामी होता है, स्त्रियोंका क्रतु-ज्ञान विषयके अन्ततक जानेवाला होता है, इससे उनकी बुद्धिकी तीव्रता आदि सूचित होती है, न कि हीनता—' ऐसा किन्हींका अर्थ निरस्त हो गया, क्योंकि—उक्त मन्त्रमें वह अर्थ विवक्षित नहीं—यह पूर्वोत्तरमन्त्रोंके संवादसे प्रत्यक्ष है। ऐसा मानने पर तो फिर पुरुषों की बुद्धि-मन्दता माननी पड़ेगी; अथवा दोनोंकी बुद्धिकी समतामें 'स्त्री' शब्दका कहना व्यर्थ हो जावेगा।

(च) 'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता' (ऋ. १०।९५।१५) इत्यादि अन्य मन्त्रोंकी साक्षीसे भी 'रघु'का अर्थ 'लघु' 'स्त्रीकी बुद्धि छोटी होती है' यह है। (छ) यदि वहां 'लघु'का अर्थ 'शीघ्र' मानें; तो स्त्रीकी बुद्धिकी चंचलता-अस्थिरता सिद्ध हो जावेगी। जैसे कि मनुजीने भी कहा है—'स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु' (८।७७) इसका अर्थ आर्यसमाजी श्रीतुलसीराम-स्वामीने लिखा है—'स्त्रीकी बुद्धि स्थिर नहीं हुआ करती'। तब भी स्त्री-निन्दा ही सिद्ध होगी, तभी तो चतुर लोग स्त्रीको ठग लिया करते हैं। (ज) 'वेदामृत' (प्र. सं. ३५४ पृ.)में ऋ.सं. (४।५।५ मन्त्र)के आशयमें प्रमुख-आर्यसमाजी श्रीशिवशंकरकाव्यतीर्थने लिखा है—'जिस हेतु स्त्रियोंको बहकानेवाले बहुत पुरुष होते हैं; इस हेतु उन्हें (स्त्रियोंको) कभी स्वतन्त्र छोड़ना उचित नहीं'। इससे भी वेदानुसार स्त्रीकी बुद्धिकी मन्दता वा अस्थिरता स्पष्ट है; तब स्त्रीकी अस्थिरता दूर

करनेकेलिए भी उसकी ताड़ना अनिवार्य हो जायगी।

(झ) मन्त्रभागात्मक वेद अन्यत्र कहता है—'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति, सालावृकाणां हृदयान्येता' (ऋ. १०।६५।१५) यहां पर स्त्रियोंका सख्य विश्वासघातक कहा है, उसकी उपमा भेड़िये वा गीदड़के हृदयसे दी है। (ञ) यही बात ब्राह्मणभागात्मक-वेद 'शतपथ'में भी लिखी है—'मा एतद् (स्त्रैणम्) आदृथाः, न वै स्त्रैणं सख्य-मस्ति' (११।५।१।६)। (ट) इसीका अनुवाद श्रीमद्भागवतमें भी आया है—'क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा' (६।१४।३६-३७) अर्थात् स्त्रियोंकी मित्रता पर विश्वास नहीं करना चाहिये। (ठ) इसी वेदके मूलको लेकर महाभारतमें कहा गया है—'स्त्रियो हि मूलं दोषाणां लघुचित्ता हि ताः स्मृताः' (अनुशासन. ३८।१)।

(ड) इसीको लक्ष्य करके बौद्धकवि-अश्वघोषने भी अपने 'सौन्दरनन्द' काव्यमें कहा है—'अकृतज्ञमनार्यमस्थिरं वनितानामिदमीदृशं मनः (८।४६)। (ढ) चाणक्यसूत्रोंमें भी कहा है—'स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम्' (४७६) 'न च स्त्रीणां पुरुष-परीक्षा' (४७७) 'स्त्रीणां मनः क्षणिकम्' (४७८) 'स्त्रीषु किञ्चिदपि न विश्वसेत्' (३५६) 'न समाधिः (चित्तस्थैर्यं) स्त्रीषु लोकज्ञता च' (३६०)। (ण) 'काव्यप्रकाश'में 'स्त्रीत्वं-धैर्यविरोधि' (१०।५०७) स्त्रीको अधीर कहा है। (त) इसलिए वेदमें भी स्त्रीका 'अधीरा' (ऋ. १।१७६।४) यह विशेषण आया है। (थ) 'जारं न कन्या' (ऋ. ६।५६।३), 'योषा जारमिव प्रियम्' (ऋ. ६।३२।५) (पूर्वमन्त्रमें 'न' उपमावाचक है) इत्यादि मन्त्रभागके प्रमाणोंमें स्त्रीका स्वभाव

वर्णित किया गया है। अतः उनमें हठ आदि दोष तथा माया आदि सम्भव हैं; तब उनका वशमें रखना आवश्यक है, उसकेलिए ताड़ना भी एक उपाय है।

(८) इसलिए मायाविनी-स्त्रियोंकी ताड़नाकेलिए अथर्ववेद (शौ.सं.)में कहा है—'इन्द्र ! जहि पुमांसं यातुधानम्, उत स्त्रियं मायया शाशदानाम्' (८।४।२४) यहां पर 'जहि'का अर्थ पीटना है, जैसे कि—'अघासु हन्यन्ते गावः' (ऋ १०।८५।१३) इसमें 'गावः हन्यन्ते'का गौवोंके चलानेकेलिए उनका पीटना अर्थ सर्वसम्मत है, जैसे कि सायणाचार्यने 'दण्डैस्ताड्यन्ते' अर्थ किया है। (ख) इसी प्रकार 'मा त्वं विकेशी उर आवधिष्ठाः' (काठकगृ. २८।४) यहां भी 'आवधिष्ठाः'का 'छाती पीटना' अर्थ आया है। (ग) इस शासनाके बिना 'पञ्चतन्त्र'की मन्थरककौलिककी कथामें घरका नाश भी एक नीति-पद्यसे दिखलाया है—'यत्र स्त्री, यत्र कितवो, बालो यत्राऽ-प्रशासिताः। तद् गृहं क्षयमायाति भार्गवो हीदमब्रवीत्'। ऐसा न करके स्त्रीकी बात माननेसे वहीं मन्थरक-कौलिककी मृत्यु बताई है। (घ) इसका ऐतिहासिक-उदाहरण स्त्री-कैकेयीकी बात मानने-वाले महाराज दशरथकी मृत्यु भी याद रख लेनी चाहिये।

(९) इसी प्रकार 'जाया पत्या नुत्तेव' (अथर्व० १०।१।३) यहां भी स्त्रीका पतिसे 'नोदन' ताड़न अर्थमें ही तात्पर्य रखता है। जैसे कि-'हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिताः' (पञ्चतन्त्र) इस प्रकार वेदमें भी स्त्रीकी ताड़नीयता बताई गई है। स्पष्ट है कि-यह सब ताड़न आदि पतिव्रता-स्त्रीकेलिए तो हो नहीं सकते; क्योंकि-वे

भला पतिसे विरुद्ध क्यों चलने लगीं ? सो यह दूसरी स्वेच्छा-चारिणी स्त्रियोंकेलिए हैं—यह स्पष्ट है। इसी प्रकार तुलसीलिखित नारी भी वही इष्ट है; उसका ताड़न ठीक ही है। व्यर्थकी ताड़ना कौन सभ्य करेगा ?

(१०) मन्त्रभागके प्रमाण दिये जा चुके; अब ब्राह्मणभागके प्रमाण देखिये। ब्राह्मणभागमें स्त्रीकी आलोचना इस प्रकार आई है—'अनृतँ् स्त्री, शूद्रः, श्वा, कृष्णः शकुनिः, तानि न प्रेक्षेत' (शत. १४।१।१।३१) यहां पर स्त्री-शूद्रोंको अनृतप्रकृति कहा है। (ख)'त्रया वा नैर्ऋता (निर्ऋतिसम्बन्धिनः) अक्षाः, स्त्रियः, स्वप्नाः' (कृष्णयजुर्वेद-मैत्रायणी सं. ३।६।३) यहां स्त्रियोंको मृत्युका दूत बताया है। (ग) ''तस्मादपि एता हि मोघसँ्हिताः' (स्त्रियां निरर्थक बातोंकी ओर जानेवाली हैं' यह इसका अनुसन्धाता आ.स. श्रीभगवद्दत्तजीने 'वैदिकवाङ्मयका इतिहास' द्वितीयभाग (प्र. सं.)के १८८ पृष्ठमें अर्थ किया है। (घ) 'तस्मात् य एव नृत्यति, यो गायति, तस्मिन्नेव एता निमिश्लिततमा इव' (शत. ३।२।४।६) 'तस्माद् गायन् स्त्रियाः प्रियः' (मैत्रायणी सं. ३।७।३) यहां स्त्रियोंका गानविद्या-विशारदों पर रीझ जाना लिखा है-सो एतदादिक दोषोंको हटवानेकेलिए ताड़ना भी उपाय वेदसम्मत है-यह सिद्ध हो रहा है।

(११) शतपथब्राह्मण तथा उसका अन्तिम काण्ड बहुत प्रसिद्ध है, उसका नाम बृहदारण्यक-उपनिषत् भी प्रसिद्ध है। उसमें कहा गया है कि-स्त्री यदि पतिके काम (इच्छा) को पूरा न करे, तो

उसे हाथसे वा यष्टि (छड़ी)से ताड़न करना चाहिये। देखिये—'सा चेद् अस्मै न दद्यात् कामम्, एनामवक्रोणीयात (भूषणादिदानेन तां वशीकुर्यात्—इति शङ्करस्वामी); सा चेद् अस्मै नैव दद्यात् कामम्, एनां यष्ट्या वा, पाणिना वा उपहत्य अतिक्रामेत्' (१४।६।४।७) (बृहदा. ६ (८)।४।७)। जब इस प्रकार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदने स्त्रीकी ताड़ना कही है; तब गोस्वामीजीकी उक्त चौपाई वेदानुकूल सिद्ध हुई। तब वेदानुकूल लिखनेवाले गोस्वामीजी पर क्रोध क्यों?

(१२) अब इस पर गो० तुलसीदाससम्मत पुराणका प्रमाण भी देखिये। (क) 'भविष्यपुराण'के ब्राह्मपर्वमें निम्न पद्य मिलते हैं—'नह्यासां [स्त्रीणां] प्रमदं दद्याद्, न स्वातन्त्र्यं, न विश्वसेत्। विश्वस्तवच्च चेष्टेत न्याय्यं भर्त्सनमाचरेत्' (८।१७) 'नाधिकारं क्वचिद् दद्यात् ऋते पाकादिकर्मणः' (८।१८)। 'स्त्रीणां पत्युरधीनत्वात् पुमानेव हि निन्द्यते। भर्त्तुरेव हि तज्जाड्यं यद् भृत्यानामयोग्यता' (८।२५) तस्माद् यथोदितास्त्वेता रक्ष्याः शासनताडनैः। ताडनैश्च यथाकालं यथावत् समुपाचरेत्' (८।२६)। (ख) उत्तमां सामदानाभ्यां, मध्यमाभ्यां (दानभेदाभ्यां) तु मध्यमाम्। पश्चिमाभ्याम् (भेददण्डाभ्याम्) उभाभ्यां च अधमां सम्प्रसाधयेत्' (८।६८)। यहां पर पुराणने इस विषयमें स्पष्टताकी सीमातीतता कर दी है। 'नानापुराणनिगमागम' (१।७) इस अपने पद्यमें गोस्वामीजीने पुराणका नाम सबसे पूर्व लिखा है—'इससे स्पष्ट है कि-उन्होंने उक्त चौपाईमें जहां पर मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदका अनुसरण किया है; वहां पुराणका उक्त वचन भी अपना आधार बनाया। उनकी

यह निजी कल्पना नहीं।

(१३) पुराणसे इतिहास भी लिया जाता है। इतिहास वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत दो बहुत प्रसिद्ध हैं। अब देखना चाहिये कि दोनोंमें भी कहीं उक्त चौपाईका आधार मिल जाय। (क) 'वाल्मीकि-रामायण' तो 'रामचरितमानस'का हृदय अथवा उपजीव्य ही है। वहां पर कहा है—'स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन (३।४५।३३) 'वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि! स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते। विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णा भेदकराः स्त्रियः' (३।४५। २६-३०) स्वा.द.जीने भी स्त्रियोंकी तीक्ष्णता मानी है—यह हम पहले कह ही चुके हैं; उनका वचन उनके अनुयायियोंकेलिए अवश्य ही वैदिक है। अब कहना चाहिये कि—जब वाल्मीकि-मुनि इस प्रकार स्त्रियोंका स्वभाव आलोचित करते हैं; तब उसके उपजीवक गोस्वामीजीने उनके उक्त दोष हटानेकेलिए उनकी ताड़ना भी लिख दी हो; तो उनके सिर पर डण्डा क्यों?

(ख) 'महाभारत'में कहा है—'ईप्सितश्च गुणः स्त्रीणामेकस्या बहुभर्तृता' (१।२०४।८) 'असत्यवचना नार्यः' (१।७४।७४) 'स्त्रियो हि मूलं दोषाणां लघुचित्ता हि ताः स्मृताः' (अनुशासन० ३८।१) जब ऐसा है, तो स्त्रीकी ताड़ना अशास्त्रीय कैसे?

(१४) 'नाना-पुराण'—इस पद्यमें गोस्वामीजीने 'क्वचिदन्यतोपि' (१।७) कहा है; अर्थात् वेद, पुराणसे अतिरिक्त अन्य-साहित्यसे भी मैंने कुछ लिया है। अब उसमें अर्थशास्त्रके ग्रन्थोंसे भी उक्त संवाद देखिये—स्वा.दयानन्दजीसे भी मान्य 'चाणक्यनीति'में

कहा है—(क) अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता।'' 'स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः' (२।१) 'कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' (चाण. १।१७)। (ख) स्वा.दयानन्दजीसे मान्य तथा 'शुक्रनीतिसार समाजशास्त्रकी दृष्टिसे एक अत्युत्तम और प्रसिद्ध ग्रन्थ है' (भारतीय-समाजशास्त्रका १७६ पृष्ठ) इन शब्दोंमें आर्यसमाजियोंसे भी मान्य 'शुक्रनीति'में भी कहा है—'अनृतं साहसं मौर्ख्यं कामाधिक्यं स्त्रियां यतः' (३।१६४)। (ग) 'मनुस्मृति'में तो इससे भी बढ़कर कहा है—'स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्। अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः' (२।२१३) 'अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः। प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम्' (२।२१४) 'रक्षिता यत्नतोपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते' (६।१५) इत्यादि। (घ) महाभारतमें भी कहा है–'स्त्रियं हि यः प्रार्थयते संनिकर्षं च गच्छति। ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः' (अनुशासन. ३८।१५)। (ङ) 'श्रीमद्भागवत'में भी उनकेलिए 'स्वैर-वृत्तयः' (६।१४।३८) शब्द आया है। (च) 'स्त्रीणां मनः क्षणिकम्' (चाक्यसूत्र ४७६) (छ) 'अकृतज्ञमनार्यमस्थिरं वनितानामिदमीदृशं मनः' (अश्वघोष-बौद्ध-प्रणीत सौन्दरनन्द ८।४६) एतदादिक अनेकस्थलोंमें स्त्रीके मनकी अस्थिरता बताई गई है।

(ज) 'नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य' (पा. ८।४।४८) यहां पर 'आदिनी' शब्दमें स्त्रीलिङ्ग देनेसे स्त्रियोंका कलह-प्रियत्व द्योतित किया गया है–यह उक्तसूत्रकी वृत्तिमें श्रीहरदत्त तथा श्रीमाधव आदिने बताया है। इस प्रकार उनका अवैदुष्य प्रदर्शित किया गया है। तब इन

दोषोंकी स्वाभाविकतावश स्त्रियोंका ताड़नाधिकारका उल्लेख अनुचित नहीं। यदि यह अङ्कुश उनसे उठा लिया जाय; तब वे निरंकुश होकर सब कार्योंमें सीमातीतता कर दें; क्योंकि–सीमातीतता कर देना स्त्रियोंकी प्रकृति होती है। स्त्रियोंका हृदय आधिक्य-प्रिय हुआ करता है। विलासिता और स्वेच्छाचारिता तथा पर-पुरुषोंकी मीठी-मीठी बातें स्त्रियोंके मृदु-हृदयोंको बहुत सुगमतासे अधिकृत कर लिया करती हैं, इसी कारण हमारे पूर्वजोंने उनका स्वातन्त्र्य अपहृत करके उन पर उक्त नियन्त्रण कर उन्हें ताड़नाकी अधिकारिणी कर दिया है। ताड़नासे 'भूत' भी डरता है।

(१५) ताड़ना भी बहुत प्रकारकी होती है। केवल छड़ीसे मारना ही ताड़ना नहीं होती। वह ताड़ना तो अन्तिम उपाय है। वाणीसे भी ताड़ना हो सकती है, आंखसे भी। संकेतसे भी ताड़ना हो सकती है। आजके सुधारकोंके दादागुरु स्वामी दयानन्दजीने तो अप्रियवादिनी स्त्रीकी ताड़नाकेलिए उसके पतिको तत्क्षण अन्य स्त्रीके साथ नियोगकेलिए नियोग (आदेश) कर दिया है। देखिये 'सत्यार्थप्रकाश' (४र्थ समु. ७३ पृ.) यदि ऐसा है तो गो. तुलसीदास-जीने ऐसा क्या गुरुतर अपराध कर डाला है कि–ताड़नामें 'नारी' का नाम लिखनेमात्रसे ही नारीभक्त आजका सुधारक-समाज गोस्वामीजीको भी ताड़नाधिकारी समझने लगा है।

(१६) 'क्वचिदन्यतोपि' (१।७) गोस्वामीजीके इस वचनसे तथा 'आगम'-शब्दसे कई मान्य अन्य शास्त्र भी गृहीत हो जाते हैं; अब उनका भी अनुसन्धान कीजिये। (क) 'अन्यत्र पुत्रात् शिष्याद् वा

शिष्यर्थं ताडयेत् तु तौ' (४।१६४) 'मनुस्मृति'के इस पद्यमें शासनाकेलिए पुत्र तथा शिष्य भी ताड़नीय माना गया है। जब इस प्रकार शास्त्रोंमें शिष्यकी ताड़ना भी लिखी है; तब पतिरूप-गुरुकी शिष्यरूपा नारीकी भी ताड़ना सिद्ध हो गई। इस प्रकार स्त्री और पुरुषकी समान ताड़ना होनेपर स्त्रीकी ताड़नामें ही आक्षेप क्यों ? (ख) स्वा.द.जीने तो स-प्र.के ११वें समुल्लासमें २०८ पृष्ठमें 'लोभी, क्रोधी, मोही, कामी गुरु'को भी 'ताडनाका अधिकारी' माना है; तब लोभ, क्रोध एवं कामकी प्रकृतिवाली कामिनीका ताडनाधिकार लिखने पर ही गोस्वामीजी आक्षेपके पात्र क्यों ?

(ग) वस्तुतः सामयिक-ताड़नाका फल सुमधुर हुआ करता है। यदि ताड़ना न हो तो प्रजा राजाके, शिष्य गुरुके, पत्नी पतिके, पुत्र पिताके, सेवक स्वामीके कभी अधीन होवें ही नहीं। ताड़नाकी स्तुति करते हुए आजके सुधारक स्वा.द.जीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ (स.प्र. २ समु. १८ पृ.)में महाभाष्यका निम्न प्रमाण दिया है— 'सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः। लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः' (८।१।८)। 'गुरु लोग अमृतसने हाथसे पीटते हैं, विषबुझे हाथसे नहीं। (घ) जब ऐसा है; तब नारीकी ताड़नाके उल्लेखमें गो. तुलसीदास पर अग्निवर्षा क्यों ?

(१७) 'न्यायदर्शन'के ४।१।६२ सूत्रके भाष्यमें लोकव्यवहारकी व्यवस्था धर्मशास्त्र (स्मृति)के अधीन कही है। अब उन स्मृतियोंमें मूर्धन्य 'मनुस्मृति'की व्यवस्था भी इस पर देखनी चाहिये—(क) 'भार्या, पुत्रश्च, दासश्च, प्रेष्यो, भ्राता च सोदरः। प्राप्तापराधास्ताड्याः

स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा' (८।२९९) यहां पर ताड़नाधिकारियोंमें भार्या (नारी) तथा दास (शूद्र)का भी नाम आया है। तब मनुजीका अनुसरण करके लिखनेवाले गोस्वामीजी पर कोप क्यों ?

मनुस्मृतिकी प्रामाणिकता।

मनुस्मृति-प्रणेता श्रीमनुजी जहां सृष्टिके आदिके हैं (देखिये हमारी इस पुस्तकका पृष्ठ १८१), वहां वादि-प्रतिवादि-मान्य भी हैं। आजके सुधारक स्वा.द.जीने भी स्मृतियोंमें केवल मनुस्मृतिको ही प्रमाण तथा सृष्ट्यादि-प्रणीत माना है। उन्होंने प्रथमसत्यार्थप्र.में 'मनुर्वै यत् किञ्चिदवदत्; तद् भेषजं भेषजतायाः' यह मनुकी प्रामाणिकताका वचन छान्दोग्यके नामसे दिया है। कृष्णयजुर्वेद-तै.सं.में भी कहा गया है—'यद् वै किञ्च मनुरवदत्, तद् भेषजम्' (२।२।१०।२)। यही कृ.य. काठकसंहिता (११।५(६)में, तथा कृ.य. मैत्रायणीसं. (१।१५)में तथा ताण्ड्यब्रा. (२३।१६।७)में कहा गया है। आर्यसमाजी श्रीतुलसीरामस्वामीने भी अपने 'भास्करप्रकाश'में वेनके नियोगमें मनुस्मृतिको सृष्टिकी आदिमें बना माना है।

उन सृष्ट्यादिजात मनुजीकी यह विशेषता क्यों है, इस पर वेद कहता है—'स सुन्वते मघवा जीरदानवे अविन्दद् ज्योतिर्मनवे हविष्मते' (ऋ.सं. १०।४३।८) अर्थात् मघवा (इन्द्र)ने सोमका अभिषव करनेवाले, शीघ्र दान देनेवाले तथा यज्ञकर्ता मनुको ज्योति अर्थात् ज्ञान दिया। यही अन्य मन्त्रमें भी कहा है—'विदत् स्वर्ज्योतिर्मनवे ज्योतिरार्यम्' (ऋ. १०।४।३४) (इन्द्रने मनुको दिव्य ज्योति प्रदान की)। यहां 'मनु'का अर्थ 'मनुष्य' नहीं; क्योंकि—

वैदिक-निघण्टुमें 'मनुष्य'के नामोंमें 'मनु' नाम नहीं। बल्कि-निरुक्तमें 'मनुष्य'का निर्वचन किया है-'मनोरपत्यम्' (३।७।२)। यहां मनुकी सन्तानको 'मनुष्य' कहा गया है। इसमें मनुजी मनुष्योंके पिता सिद्ध हुए। तभी निरुक्तकार श्रीयास्कने 'यामथर्वा मनुष्पिता' (ऋ. १।८०।१६) मन्त्रकी व्याख्या करते हुए 'मनुः पिता मानवानाम्' (नि. १२।३४।१) मनुको मानवोंका पिता कहा है। ज्योति प्राप्त होनेसे ही मनुको सर्वज्ञानमय कहा गया है। जैसे कि-'यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनुस्मृति २।७) (जो किसीका कोई धर्म मनुने कहा है, वह सब वेदोंमें कहा है, क्योंकि--वे मनु सर्वज्ञानमय हैं।) ज्योति जिसे मिल गई, वह सर्वज्ञानमय होगा ही। तब मनु-प्रोक्त कोई भी वचन उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता। मनु परमात्माके अवतार हैं, जैसा कि मनुस्मृतिमें भी कहा है-'एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्' (१२।१२३) यह ठीक भी है। इसी कारण वेदमें भी कहा है-'अहं मनुरभवम्' (ऋ. ४।२६।१) अर्थात्-मैंने मनुका अवतार लिया। यह ब्रह्मभावमें प्राप्त हुए वामदेव ऋषि कह रहे हैं। तब उन्हीं मनुको अनुसृत करके कहा हुआ गो. तुलसीदासका वचन तिरस्करणीय वा निर्मूल नहीं हो सकता।

हम 'मानव' वा 'मनुष्य' मनुकी सन्तान होनेके नातेसे कहलाते हैं; 'मनोरपत्यं मानवः' 'मनु' को 'तस्यापत्यम्' (पा. ४।१।९२) से अण् प्रत्यय करने पर 'मानव' शब्द बनता है। 'मनोर्जातौ

अञ्-यतौ षुक् च' (पा. ४।१।१६१) इसके अनुसार 'मनु' शब्दको सन्तान और जाति अर्थमें अञ् प्रत्यय और षुक्का आगम और पूर्व अच्को वृद्धि करके 'मानुष' शब्द बनता है, और 'यत्' प्रत्यय तथा षुक्का आगम करके 'मनुष्य' शब्द बनता है। अथवा 'आगमशास्त्रमनित्यम्' इस परिभाषाके अनुसार अञ् प्रत्ययमें षुक्का आगम न होकर भी जाति-अर्थमें 'मानव' बन जाता है। जब सृष्टिके आदिम व्यक्ति 'मनु'की सन्तानका नाम मानव है; तब सच्चा मानव, वा मनुष्य वही कहलावेगा; जो अपने पिता मनुके नियमानुकूल चले! मनुने अपने नियम अपनेसे उत्पन्न भृगुके द्वारा सुनाई 'मनुस्मृति' में कहे हैं; तब उसके अनुकूल व्यवहार करने वाला, वा उस मनुके नियमको माननेवाला, वा उसका अनुसरण करनेवाला पूर्ण 'मानव' कहलावेगा। जब ऐसा है; तब मनुके अनुकूल उक्त चौपाई लिखने वाले गोस्वामीजी पर वाग्बाणों की वर्षा करना अपनी अमानवताका नग्न दर्शन कराना है। इसमें शास्त्रका कोई विरोध नहीं। अधीनको अपराधमें दण्ड देना लोकव्यवहार-सिद्ध है। (ख) इसी कारण वादि-प्रतिवादिमान्य शुक्रनीतिमें भी कहा है 'भार्या पुत्रश्च, भगिनी, शिष्यो, दासः (शूद्रः) स्नुषाऽनुजः। कृतापराधाः ताड्यास्ते तनुरज्जुसुवेणुभिः, (४।८५) पृष्ठ-तस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कदाचन' (८६) यहां पर भी शूद्र और नारीको अपराधमें ताड़ना कही है। (ग) इसके अतिरिक्त स्त्री प्रकृतिस्वरूपा मानी जाती है। प्रकृतिका एक स्वरूप 'अविद्या' भी है। उसके लिए पुरुषरूप परमात्माका नियन्त्रण भी उसपर होता है।

इस प्रकार प्रकृतिरूप स्त्रीपर भी पुरुषका ताड़नरूप नियन्त्रण स्वतः-सिद्ध एवं प्राकृतिक है। जहां धर्मशास्त्रोंसे धार्मिक-व्यवस्था हुआ करती है; सो हम मनु आदि धर्मशास्त्र-मूर्धन्योंकी स्त्री-ताड़नाके विषयमें साक्षी दे चुके हैं; वहाँ अर्थशास्त्रोंका भी राजकीय-व्यवहारकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्व होता है; सो उनमें भी अनुसन्धान कर लेना चाहिये, जिससे गोस्वामीजीकी 'नानापुराण-निगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि' (१।७) यह प्रतिज्ञा पूर्ण हो जावे।

(१८) कौटलीय-अर्थशास्त्र एक बहुत ही प्रसिद्ध तथा प्रामाणिक 'आगम' है। उसमें स्त्रीदण्डकेलिए लिखा है कि-पहले तो उसे गालीसे सीधा करो, कहो कि-'नग्ने! विनग्ने! न्यङ्गे! अपितृके! अमातृके' इति अनिर्देशेन (साक्रोशसम्बोधनेन स्त्रियाः) विनयग्रहणम्'। तब भी वह सीधी न हो, उसे अर्थशास्त्रप्रणेता ताड़ना बताते हैं—'वेणुदल-रज्जु-हस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघातः (३।३।६० अध्याय)। यहां पर बेंत वा हाथ आदिसे स्त्रीकी ताड़ना भी कही गई है।

(ख) इस प्रकार 'शङ्खस्मृति'में स्त्रीका लाड-प्यार तथा समयपर ताड़ना सूचित की गई है। जैसे कि—'लालनीया सदा भार्या, ताडनीया तथैव च। ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा' (४।१६) यहां धर्मशास्त्रमें स्त्रीकी ताडनीयतासे भी उसका 'श्री' बनना लिखा है। (ग) नीतिशास्त्र-हितोपदेशमें भी लिखा है—'सुशासिता स्त्री, नृपतिः सुसेवितः।...सुदीर्घकालेपि न यान्ति

विक्रियाम्' (मित्रलाभ २२ पद्य) यहां स्त्रीकी सुशासना (ताडना आदिसे वशमें रखने)से भी वशमें की हुई स्त्रीकेलिए सदा 'अविकारिणी' कहा है। (घ) हम पहले कह चुके हैं कि-ताड़ना बहुत प्रकारकी होती है—'स्त्रीदण्डश्च पृथक्-शय्या' यह भी उसकी एक बड़ी ताड़ना है। सो इस प्रकार 'नानापुराणनिगमागम'का सार लिखनेवाले गो. तुलसीदास पर बौछार क्यों ?

(ङ) यह सब लिखनेका अभिप्राय यह है कि-जब शिष्योंको सिर पर चढ़ा दिया जाय, उनका ताडनाभय हट जावे; तब वे न केवल अपना पाठ ही याद नहीं करते, न केवल विद्यालयमें समय पर प्राप्त नहीं होते, बल्कि कलह आदि भी करते हैं; और मर्यादा को भी तोड़ देते हैं। इसी प्रकार नारीके विषयमें भी जाना जा सकता है। नारीका जब पतिके अधीन रहना धर्म है; तो अधीनकी शासनाकेलिए कुछ नियम एवं नियन्त्रणादि अंकुश अवश्य स्थापनीय होते हैं-इसमें स्वाभाविकता है; आक्षेपार्हता सर्वथा नहीं। अपराधीकी ताड़ना उनके अपने दर्जे-मुताबिक होती है। बीरबलने एक ही चोरीके अपराधमें पकड़े हुए तीन पुरुषोंको उनकी प्रकृतिकी जांच—देखभाल करके उनको भिन्न-भिन्न दण्ड दिये। एकको कहा कि-'मुझे तो तुमसे ऐसी आशा न थी कि-तुम भी यह बुरा काम कर सकते हो' यह कहकर छोड़ दिया। दूसरेको थप्पड़ मारकर कहा—खबरदार, ऐसा फिर न करना। तीसरेका मुँह काला करवाकर गधेपर चढ़वाकर शहरमें घुमाया। तीनोंके परिणामका पता लगवाया। पहलेने इस बेइज्ज़तीसे लज्जित

होकर आत्महत्या कर ली थी। दूसरेने फिर वैसा अपराध कभी नहीं किया। तीसरा फिर उसी चोरीमें पकड़ा गया। इसी प्रकार स्त्रीके भी तीन भेद होते हैं; उनके दण्ड भी तीन प्रकारके होते हैं, यह हम पहले भविष्यपुराणके वचनसे बतला चुके हैं।

(१६) इस प्रकार शूद्र-अन्त्यजआदिके भी तीन वर्णोंके अधीन होनेसे उनके स्वैराचारमें भी ताड़ना अनुचित नहीं। आजकलके समयकी तरह उन्हें सिरपर चढ़ा कर, वा उनसे खुशामद करके, आवश्यकतासे अधिक अधिकार उन्हें दे दिये जाएँ, उन्हें ताड़ना-निर्भर्त्सनाका भय न रहे; तब परिणाम यह होता है कि-उनका दिमाग ही फिर नहीं मिलता; तब वे धमकियां देते हैं, तङ्ग करते हैं, कभी हड़तालें करते हैं; कभी वेतन न बढ़ाने पर काम बन्द कर देनेकी विभीषिका देते हैं, कभी मनुस्मृति वा भगवद्गीता आदिको जलाते हैं। अतिशूद्र-कोटिके जिन्ना आदि मुसलमानों को सिर चढ़ानेके परिणामस्वरूप ही पाकिस्तानका जन्म हुआ है।

(ख) यदि बन्दर-आदि पशुओंको ताड़नाका भय न दिया जावे, किन्तु उनको खिलाया-पिलाया ही जाय; तब वे ही पुरुषको घुड़की देते हैं; उनके घरमें घुसकर उनका भोजन आदि भी ले जाते हैं, उनके बच्चोंको काट लेते हैं। तब उनकी ताड़ना भी अनुचित नहीं। (ग) इस प्रकार यदि गँवारोंको भी अपने दण्डका भय न रहे; तब वे चोरी करते हैं अन्य असभ्यताएँ करना शुरू कर देते हैं; जैसे कि-नियन्त्रणसे पहले दक्षिण-हैदराबादके 'रिजवी' आदिको याद रख लेना चाहिये। तब गँवारकी ताड़ना

भी उसकी शिक्षार्थ अनुचित नहीं। (घ) इस प्रकार ढोल केवल पड़ा ही रहे; उसकी ताड़ना कभी हो ही नहीं; तब उसका चमड़ा ढीला वा कमजोर हो जावे और समय पर बजे भी नहीं।

(ङ) इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे स्त्रीको भी पति आदि द्वारा आंख आदिकी भी ताड़नाका भय न रहे; 'स्त्री-दण्डश्च पृथक्-शय्या' आदि दण्डका भय उसे न दिया जाय, केवल पति उसकी खुशामदें ही करता रहे; उसे अपने सिर ही चढ़ाता जाय; तब वह भी निर्भय, मस्त हो जाती है। 'भय बिनु होत न प्रीति' इस गो.जीके वचनानुसार पतिके प्रेमको भी छोड़ दे सकती है। मान कर बैठती है; पतिको पांव पर गिरवाती है, कभी दुर्लभ बहुमूल्य-वस्तुओंके मँगानेकेलिए कहकर पतिको तंग करती है, पतिके कहे समयमें भोजन तैयार नहीं करना चाहती, रातमें आये पतिके अतिथिको भी या तो भोजन नहीं मिलता; या होटलसे उसका भोजन मँगवाना पड़ता है। वैसी स्त्री पतिको ही डांट बताती है, उसका तिरस्कार करती है, सदा ही कामुकी बनी रह सकती है, पर-पुरुषोंके देखनेकी प्रकृतिवाली वा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भी बन सकती है। तब शिष्यादिकी भांति स्त्रियोंकी भी समय पर ताड़ना-आदिसे शासना न्याय्य है, इससे मर्यादा नहीं टूटती। सब काम समयपर होते हैं—यह सब सर्वानुभवसाक्षिक है। अतः इसमें कोई आक्षेपका अवसर नहीं।

(१०) प्रकृत समुद्र भी यहां इसी रहस्यको बता रहा है। जबकि समुद्रकी प्रसन्नताकेलिए तीन दिनके अनुष्ठानरूप-सत्याग्रहसे

भी समुद्रका हृदय-परिवर्तन न हुआ—'विनय न मानत जलधि जड़ गये तीन दिन बीति। बोले राम सकोप तब' तब श्रीरामने प्रकृत अर्थको पुष्ट करते हुए कहा—'भय बिनु होत न प्रीति'। इसीलिए उन्होंने लक्ष्मणको आदेश दिया—'लछिमन ! बान शरासन आनू। सोखउ वारिधि विसिख कृसानू'। तब लक्ष्मणसे धनुष लानेपर—'संधानेऊ प्रभु विशिख कराला। उठी उदधि-उर अन्तर ज्वाला' तब समुद्रादिस्थित मगरमच्छ-आदिमें खलबली पड़ जानेसे समुद्रमें व्याकुलता प्राप्त हुई। तभी उसका मान टूटा। तभी वह श्रीरामकी इच्छानुकूल कार्य करने शुरू हुआ; और क्षमा मांगी—'सभय सिन्धु पद गहि प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे'। तभी उसने स्वयं यह कहा कि-प्रभो ! मुझ गँवारकी ताड़ना करते हुए आपने ठीक किया। ताड़नासे पहले मैं कठोर बना बैठा था। ताड़ना वा ताड़ना-भयसे मैं मृदु हो गया। तभी उसने कहा—

'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी। ये सब (सकल) ताड़नके अधिकारी'

ताड़नाधिकारी यह पांच उसने पराधीनोंके उपलक्षणमें रखे हैं। जो पराधीन होता है; वह कार्यत्रुटिमें ताड़नाका पात्र होता ही है, यह स्वाभाविक है। शूद्रसे भृत्यका, नारीसे शिष्यका भी उपलक्षण जान लेना चाहिये। भृत्य और शिष्य एवं पुत्र स्वामी, गुरु तथा पिताके अधीन होनेसे अपराधी होनेपर ताड़ित होते हैं-इसमें कोई अन्याय नहीं। उक्त चौपाईकी 'भय बिनु होत न प्रीति' 'प्रभु भल कीन्ह मोंहि [ताड़नासे] सिख दीनी' इन चौपाईयोंके साथ ठीक संगति लग रही है, तब यही इसका यथार्थ अर्थ सिद्ध

होता है। इससे गो. तुलसीदास नारीमात्रके निन्दक नहीं हो सकते कि-पतिव्रताको भी वे व्यर्थकी ताड़ना दिलायें। बिना अपराधके भी साधारण-स्त्रीको ताड़ना दिलायें। समुद्रको भी अपराधी होनेपर ताडित किया गया। उसे सदा अग्निबाण नहीं मारे जाते, वा नहीं मारे गये।

सो उक्त चौपाईका पूर्वोक्त चौपाईयोंके साथ स्पष्ट अन्वय हो रहे होनेसे यही उसका यथार्थ अर्थ सिद्ध है। स्त्री-शूद्रोंसे डरकर ग्रन्थकारके अनभीष्ट अर्थको करना उचित नहीं। महाकवि-श्रीभारविने ठीक ही कहा है—'अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषा (ऽऽ)दरः' (किरा.१।३३) तब जो लोग इस चौपाईका यह अर्थ करते हैं कि-"जो पुरुष नारीका 'ताड़न' कर लेता है, या नारीकी महत्ताको अथवा नारीको 'ताड़' अर्थात् पहिचान लेता है; वही पुरुष अपने जीवनको सफल बना सकता है; उसी पुरुषके चरणोंमें नारी हँस-हँसकर अपना सर्वस्व दे डालती है, यही पुरुषकी सच्ची विजय है" ऐसा अर्थ करनेमें लगे हुए, गोस्वामीजोकी निर्दोषता सिद्ध करनेमें लगे कई-हिन्दी-कोविदोंका उक्त मीमांसासे खण्डन हो गया, क्योंकि-उक्त अर्थ गोस्वामीजीको विवक्षित नहीं; और प्रकरणका भी उक्त-अर्थमें समन्वय नहीं। उस अर्थमें पशु आदि सबका अर्थ-समन्वय न होनेसे तथा इस अर्थके प्रकरणविरुद्ध होनेसे माननीयता नहीं।

(२१) उक्त चौपाईके 'नारी' शब्दसे केवल 'पत्नी' नहीं; अन्य स्त्री भी गृहीत हो सकती है। वह स्त्री भी यदि मर्यादासे पतित

होती है, तब उसकी ताड़ना भी अनुचित नहीं। तभी भगवान् श्रीरामने ताटका-राक्षसीको—ताड़ना तो छोड़िये-प्रत्युत मार डाला; जिसकेलिए ऋषि-विश्वामित्रने श्रीरामको कहा था—'नहि ते स्त्री-वधे कापि घृणा कार्या नरोत्तम ! अधर्म-सहिता नार्यो हताः पुरुष-सत्तमैः' (वाल्मी० १।२५।१७-२२)। इसी प्रकार मर्यादा तोड़नेपर शूर्पणखाके नाक-कान कटवाकर श्रीरामने उसको दण्ड दिया। इसके अतिरिक्त शास्त्रसे विरुद्ध तपस्या करते हुए शम्बूक-शूद्रको भी भगवान् रामने दण्ड दिया। जब यह बात भगवान् रामको जो कि मर्यादा-पुरुषोत्तम थे—सम्मत है, 'इन्द्र ! जहि पुमांसं यातुधान-मुत स्त्रियम्। मायया शाशदानाम्' (अथर्वसं. ८।४।२४) इस प्रकार वेदको भी सम्मत है, पूर्व कहे प्रमाणोंसे धर्मशास्त्रोंसे भी अनुमोदित है, पुराण और इतिहाससे समर्थित है, और अर्थशास्त्र से भी सकारी गई है, तब रामभक्त, वेद-स्मृति-पुराण-इतिहास-अर्थशास्त्र आदिके विद्वान् गोस्वामी-श्रीतुलसीदासजीका ताड़नाके अधिकारियोंमें स्त्री एवं शूद्रके नामोल्लेखमात्रसे, अपमान करना योग्य नहीं है; और उनके अभिप्रायके विरुद्ध उनकी चौपाईका अपना मनःकल्पित अर्थ कर देना भी न्याय्य नहीं है।

ताड़नाधिकारी ये पांच उन्होंने अधीनोंके उपलक्षणमें लिखे हैं। जो पराधीन होता है, वह कार्यकी त्रुटिमें ताड़नाका पात्र हुआ करता है—यह स्वाभाविक है। शूद्रसे नौकरका, नारीसे शिष्यका भी उपलक्षण समझ लेना चाहिये। नौकर, तथा शिष्य एवं पुत्र भी स्वामी एवं गुरु तथा पिताके अधीन होनेसे अपराधी

अवस्थामें ताड़ना पाते हैं—इसमें कोई अन्यायकी बात नहीं है। पर इससे गोस्वामीजी नारीमात्रके निन्दक नहीं माने जा सकते; अन्यथा सीता, कौशल्या, सुमित्रा एवम् अनसूया आदियोंके उत्कृष्ट-चरित्रका वे निर्माण कैसे करते? आशा है कि—उनके विरुद्ध अर्थकी चेष्टा कर रहे हुए व्यक्ति 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' इस न्यायसे विरुद्ध अपने मनःकल्पित अर्थके करनेकी दुष्प्रकृतिको छोड़ देंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि—गोस्वामीजीने इतिहासके अतिरिक्त जो वचन लिखे हैं; उनका मूल—नाना पुराण, निगम, आगम जो कि हमारे धर्म-शास्त्र हैं—उनमें पाया जाता है उनने निराधार कुछ नहीं लिखा। तब उनपर हो-हल्ला करना अपना अज्ञान प्रकाशित करना है।

कई प्रूफकी अशुद्धियां पाठकगण इस प्रकार सुधार लें—पृ. १६ पं. ७ 'तयोर्द्वैधे'। पृ. ६१ पं. ६ (२।१।६०)। पृ. ८० पं. २१ बनाया। १[illegible] पं. १७ 'माध्यन्दिन'। १२२ पं. ७ 'ऋग्'। १२३ पं. १० 'पूर्व'। १३४ पं. ३ 'धारयिष्णुः'। १३७ पं. १५ 'त्युपासीत'। १४२ पं. २० 'यजूंषि'। १४३ पं. ५ 'वादिप्रतिवादिमान्य'। पं. १० 'यज्ञार्थ'। १६७ पं. १६ 'ऋक्'। १७६ पं. १६ 'मानुषः'। २१३ पं. ५ 'कर्तुमुद्यतः' (३।४।२०।७४-७७)। पं. १० 'निस्तेजस्कता'। २३१ पं. १० 'पात्र-बहिष्कृत चाण्डाल'। २६५ पं. २२ 'विद्या'। २८७ पं. १ 'चाण्डाल'। प्रघट्टकामें कहीं कई अङ्क दुबारा आगये हैं, उनको पाठक सुधार लें। साधारण अशुद्धियां नहीं बताई गईं।